

कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन

डॉ. मुकेश कुमार

पीएच.डी., डी.लिट्

प्रवक्ता राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय,

रामपुरा, हिसार, हरियाणा, भारत

शोध संक्षेप

कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यासों में उस नारी-जीवन का विविधरूपीय एवं विविधपक्षीय यथार्थ चित्रण हुआ है, जो मानव जीवन का आधार है। इनके उपन्यासों में चित्रित सभी नारियाँ स्वयं कष्ट, दुख, पीड़ा एवं विकट जीवन परिस्थितियों को भोगते हुए भी समाज व परिवार के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन ही समर्पण एवं त्याग पर ही प्रतिष्ठापित है। इनके उपन्यासों की नौकरानी शानो, आशा माई, ललिता, बानो, उर्मिला, बांझ मांजी, रसीला, सीमा, जानकी, पारो, दोहरी माई जैसी अनेक नारियों के जीवन के कष्टों, पीड़ाओं, यातनाओं, अभावों आदि को देखकर यही लगता है कि शायद विधाता ने इनके भाग्य में सुख, संतोष व शान्ति की सृजना ही नहीं की। सुखी-जीवन तो इनको स्वप्न में भी नसीब नहीं हो पाता है। अंततः इन्हीं दुःखां, कष्टों, पीड़ाओं और संघर्ष को ये अपने नारी-जीवन की नियति मान लेती हैं। इसी नारी-जीवन का यहाँ पर स्वाभाविक, मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण हुआ है।

भूमिका

साहित्य और समाज दोनों ही परस्पर एक-दूसरे की अभिव्यक्ति के सशक्त साधन हैं। साहित्य का मुख्य वर्ण्य-विषय वही सम्पूर्ण व्यक्ति है जो समाज का मुख्य घटक या मूलाधार है। साहित्य और समाज का यह सम्पूर्ण व्यक्ति नर और नारी का ही समन्वित रूप है। नर और नारी दोनों मिलकर ही एक-दूसरे के जीवन को पूर्णता व सार्थकता प्रदान करते हैं। दोनों ही एक-दूसरे के अभाव में अपूर्ण हैं। समाज व जीवन-क्रम में दोनों का ही समान महत्त्व है। जब समाज या जीवन-क्रम में दोनों में से किसी एक के महत्त्व की उपेक्षा की जाती है, तो यह अवश्य ही विचारणीय प्रश्न बन जाता है। प्राचीनकाल से ही समाज में नारी उपेक्षा का यही प्रश्न सदियों से चला आ रहा है, जो समय-समय पर प्रबुद्ध एवं

सजग मनीषियों और समाज सुधारकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। आधुनिक युग से पूर्व तक विशेषकर भारतीय पुरुष प्रधान समाज में नारी को पद-पद पर उपेक्षा एवं तिरस्कार का सामना करना पड़ता रहा है। इसी के साथ उसे समाज की अनेक प्रकार की कठोर शारीरिक एवं मानसिक यातनाओं से भी गुजरना पड़ा है। वह सदैव ही किसी न किसी रूप में समाज के शोषण की चक्की में पिसती आ रही है। पुरुष के मुकाबले में उसे हर स्थान पर सदैव ही कमजोर या अबला समझा जाता रहा है। उसे किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता, अधिकार या सुरक्षा प्राप्त नहीं थी। यहाँ तक कि पुरुष समाज द्वारा उसे व्यक्ति के स्थान पर केवल भोग-विलास की एक वस्तु या सामग्री ही माना जाता था। नारी की इसी ऐतिहासिक सामाजिक स्थिति

के विषय में लेखिका महादेवी वर्मा लिखती है कि, “भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति का इतिहास उसके विकृत से विकृततर होने की कहानी मात्र है। बीती हुई शताब्दियाँ उसके सामाजिक प्रासाद के लिए नींव के पत्थर नहीं बनीं, वरन् उसे ढहाने के लिए वज्रपात बनती रही हैं। फलतः उसकी स्थिति उत्तरोत्तर दृढ़ तथा सुंदर होने के बदले दुर्बल और कुत्सित होती गई।”¹

उस समय नारी-जीवन इतना यातनामय, कृष्टपूर्ण एवं दुरूह बन गया था कि वह एक अभिशाप से कम नहीं था। अपने इसी अभिशाप से मुक्ति के लिए वह कालांतर से ही समाज से निरंतर संघर्ष करती आ रही है, जिसमें आज उसको कुछ सफलता भी मिली है। उसका यह संघर्ष आज भी निरंतर जारी है। उसके इस संघर्ष को गति एवं बल प्रदान करने में सजग एवं प्रबुद्ध साहित्यकारों की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही है। इन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज व परिवार में नारी की यथार्थ स्थिति का साकार चित्रण किया है और इसी के साथ नारी जागरण के स्वर को भी प्रमुखता से उठाया है। ऐसे ही सजग एवं युगचेता साहित्यकारों में समकालीन उपन्यासकार कृष्ण बलदेव वैद है, जिन्होंने नारी के दुःख-दर्दों व पीड़ाओं को अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इसी के साथ ही आधुनिक नारी के प्रखर विद्रोही स्वर को भी वाणी दी है। कृष्ण बलदेव वैद ने अपने उपन्यासों में नारी का विविधरूपीय एवं विविधपक्षीय यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है। इनके उपन्यासों में वर्षों से पददलित, प्रताड़ित, तिरस्कृत, उपेक्षित एवं शोषित परम्परागत भारतीय नारी के साथ आधुनिक शिक्षित, पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित और अन्याय व शोषण के विरुद्ध विद्रोह के स्वर

उगलने वाली नारी का भी यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है। समाज में नारी के शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ। समाज में नारी के शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं दुर्दशा का केवल पुरुष समाज ही नहीं, अपितु स्वयं नारी समाज भी उतना ही उत्तरदायी है। समाज व परिवार में पुरुष के साथ ही एक नारी ही दूसरी नारी को आगे बढ़ने से रोकती है और उस पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए जाते हैं। ये सब नारी की परस्पर ईर्ष्या एवं रूढ़िवादी संकीर्ण मानसिकता का ही एक परिणाम है। “नारी के भीतर ईर्ष्या की भावना निहित होती है। कभी वह अपनी समानधर्मी साथिन की उन्नति को देखकर जलती है, तो कहीं सास बनकर बहू के साथ दुर्व्यवहार करती है। अपनी संतान पर बहू का एकछत्र राज्य स्वीकार नहीं कर पाकर और तरह-तरह से उसे आहत करती है।”²

इसीलिए आधुनिक नारी का विद्रोह केवल पुरुष समाज से नहीं है, विरोध है उसकी रूढ़ मानसिकता से। लड़ाई भी उसी से है। प्रकृति से स्त्री-पुरुष परस्पर पूरक हैं, उनके पूरक हुए बिना न किसी परिवार की कल्पना हो सकती है, न समाज की, न देश की। स्त्री मात्र इतना चाहती है कि पारिवारिक-सामाजिक जीवन में उसे आत्मसम्मानपूर्ण साझेदारी दी जाए।³ यही उसका संघर्ष है और यही उसके संघर्ष की परिणति है।

उपन्यासों में चित्रित नारी

कृष्ण बलदेव वैद का ‘नर नारी’ उपन्यास पूर्णतः नारी जीवन पर ही केंद्रित है। यह उपन्यास मुख्यतः समाज व परिवार में नारी-शोषण और उसके विरुद्ध नारी के विद्रोह की व्यथा-कथा का यथार्थ चित्रण करता है। उपन्यास के केन्द्र में राजू (सूअर) और सीमा का मध्यवर्गीय परिवार

है। राजू और सीमा दोनों पति-पत्नी हैं, जो नौकरी-पेशा करते हैं। राजू एक परम्परागत रूढ़िवादी नारी विरोधी विचारधारा का व्यक्ति है। वह सीमा को अपनी पत्नी न मानकर, आधुनिक कामकाजी नारी के समान ही अपनी प्रतिद्वंद्वी मानता है। “आज वह पुरुष की जीवन-संगिनी या संपूरिका ही नहीं, प्रतिद्वंद्वी भी है।”⁴ इसी के साथ वह उसे केवल भोग-विलास की एक वस्तु से ऊपर दर्जा देने को तैयार नहीं है। वह पुरुष समाज के उन व्यक्तियों में से एक है, जो अपनी पत्नी से तो सीता जैसी अपेक्षा रखते हैं और स्वयं राम बनने को तैयार नहीं है। इसी तरह वह सीमा से तो यह अपेक्षा रखता है कि वह हर समय उसी को सर्वोपरि माने, उसी का ध्यान रखे और किसी दूसरे से बातें करना तो दूर, यहाँ तक कि सोचे तक नहीं, लेकिन उसे स्वयं पर किसी भी प्रकार का बंधन स्वीकार्य नहीं है। वह उसके चरित्र पर भी निरंतर संदेह करता रहता है। स्वयं उसी के शब्दों, “ममी मेरी भोली महारानी बिलकुल। सीमा को सीता कहती है। मैं कहता हूँ आजकल कोई साली सीता-वीता नहीं सब सरूपनखा। एक से बढ़कर बेहया सब कुछ करवाने को तय्यार। हर दम।”⁵ उसके अनुसार नारी की अपनी कोई भावनाएँ या इच्छाएँ नहीं होनी चाहिए। यहाँ तक कि वह उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को भी स्वीकारने के पक्ष में नहीं है। उसके अनुसार नारी का सम्पूर्ण जीवन ही पति के लिए होता है, वह उसे जैसे चाहे प्रयोग कर सकता है। उसी के शब्दों में, “जो हो औरत का यह धर्म बनता है कि वह अपने हस्बेन्ड का मन बहलाए, उसे खुश रखे, उसके आगे-पीछे फिरे। और जो औरत ऐसा नहीं करती नुक्सान उठाती है।”⁶ उसके अनुसार पत्नी तो केवल भोग-विलास के लिए ही होती है या फिर पति की सेवा करने

के लिए। “बीवी से दोस्ती मुश्किल। होनी भी नहीं चाहिए। बीवी तो बस बिसतर गर्म करने के लिए।”⁷ अपनी इसी संकीर्ण एवं रूग्ण मानसिकता के कारण वह सीमा के साथ मारपीट व गाली-गलौच भी करने लगता है। इतना ही नहीं वह उसको कहीं बाहर आने-जाने से भी रोकने लगता है। यदि सीमा कहीं जाने की कोशिश भी करती है, तो वह उसे घर से बाहर ही रहने की भी चेतावनी सुना डालता है। स्वयं राजू के ही शब्दों में, “तब मैंने पूरे जोर से कड़क कर कहा खबरदार! और साथ ही मैंने उछलकर उसका रास्ता रोक लिया। फिर मैंने एक एक वर्ड पर जोर देकर कहा अगर तूने कदम इस कमरे से बाहर रखा तो इस घर के दरवाजे हमेशा के लिए बंद समझना समझी।”⁸ ऐसी स्थिति में सीमा को अपनी सास से भी किसी प्रकार की संवेदना प्राप्त नहीं होती है। धीरे-धीरे उसका घर और परिवार से मोहभंग होने लगता है और अंत में वह घर-परिवार छोड़कर नारी-मुक्ति आंदोलन में शामिल होने का निर्णय तक कर लेती है।

इसी उपन्यास की बांझ-मांजी (राजू की बुआ) भी इसी प्रकार नारी-शोषण एवं प्रताड़ना का शिकार रही है। उसके जीवन की व्यथा-कथा तो और भी अधिक मार्मिक है। वह तो जीवन में पग-पग पर अभिशप्त जीवन जीने को विवश है। जीवन का पहला अभिशाप तो यही है कि वह एक नारी है; दूसरा यह है कि वह स्वयं तो बच्चा पैदा करने में पूर्णतः सक्षम है, केवल पति की नपुंसकता के कारण ही उसे आजीवन बांझ का अभिशप्त जीवन जीना पड़ता है और जीवन-पर्यन्त तक लोगों के व्यंग्य-बाणों से बिद्ध होना पड़ता है। तीसरा यह है कि उसे जवानी में अपने नपुंसक और शराबी पति के द्वारा हर रोज अपमानित और प्रताड़ित होना पड़ता है। विवाह से पहले तक

तो वह पिता के घर पर नर-नारी के सामाजिक भेदभाव का शिकार रही। इस भेदभाव से निकलकर जब वह पति के घर पहुँची तो उसके विवाह-पूर्व की सभी स्वाभाविक आशाएँ मिट्टी में मिल जाती हैं और वह एक खाई से निकलकर दूसरे अंधे कुएँ में गिर पड़ती है। वहाँ पर एक तरफ तो उसे पति की नपुंसकता का दंश झेलना पड़ता है और दूसरी तरफ उसी शराबी पति द्वारा गाली-गलौच, मारपीट एवं अपमान सहने के साथ ही सास व लोगों द्वारा दिए जाने वाले बाँझपन के व्यंग्य बाणों से आहत होना पड़ता है। इसी संदर्भ में उसकी कुछ शुभचिंतक रिश्तेदार परस्पर बातें करते हुए कहती हैं कि “बाँझों में यही बुरी बात। बूढ़ी नहीं होती। आखिर तक सदाबहार। आंखों में भूख। कपड़ों का शौक। सजने-धजने का। हड्डी भी सख्त। बाँझों से बीमारी भी डरती है। हम भी। बाँझों का साया भी बुरा जरा देखो तो इनका सूटा।”⁹ बाँझ औरत के चरित्र को समाज सदैव ही संदेह की दृष्टि से देखता आया है। बाँझ मांजी को तो समाज के साथ ही उसका पति भी सदैव ही संदेह की दृष्टि से देखता था और शराब पीकर निरंतर उसके साथ मारपीट व गाली-गलौच करता रहता था। स्वयं उसी के शब्दों में, “उस रात से पहले पीकर अक्सर मार-पीट, मैं हाथ जोड़ती मेरा क्या दोष, वह कहता तू बदमाश तेरी आंखों में ऐब। पूछता बोल सच बोल उस चंबेली से क्यों मिलती है। हर रात पूछता आज कहां कहां गयी मां को धोखा देकर। उसकी मां उसके कानों में न जाने क्या क्या।”¹⁰ इसी क्रम में एक अन्य स्थान पर भी वह अपनी इसी पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहती है कि “कभी-कभी वह बाहर से शूशक मतलब पतली टहनी की चाबुक सी ले आता कहता बोल अब तक कितनों से किस-किस से कहां कहां। मैं फिर भी

चुप, चीखता और पीटता जाता शूशक टूट जाती वह ताबड़ तोड़ अपना माथा पीटना शुरू कर देता मैं हैरान कुछ समझ में न आता कैसे रोकू उसको। कभी कभी पीटते पीटते एक ही रट तू बदमाश, तू रण्डी, तू बदमाश, तू रण्डी! ... जब वह पीट रहा होता मैं कहती रहती मन ही मन और मारो और मार डालो।”¹¹

इतना कुछ सहने के बाद आखिरकर बाँझ मांजी के सब्र का बाँध टूट जाता है और वह अपने उस पति के अन्याय, अत्याचार और मारपीट का पुरजोर विरोध कर देती है। वह भी उसके सामने अपनी वाणी और शारीरिक बल का भी प्रयोग करने लगती है। इसके बाद वह तो चुप हो जाता है लेकिन समाज आखिरकार चुप नहीं होता है। वह नारी शोषण एवं अत्याचार के लिए केवल पुरुष को ही उत्तरदायी नहीं मानती है अपितु इसके लिए नारी भी उतनी ही उत्तरदायी है, जितना कि पुरुष। एक स्थान पर वह नारी भेदभाव, शोषण एवं उसकी दुर्दशा के मूल कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहती है कि “हर बेऔलाद औरत को बाँझ क्यों! हम सब औरतों के दुश्मन क्यों! ... औरत पर इतने अत्याचार। वैसे औरतों का अपना भी दोष। हम इतनी दुर्बल क्यों! हर औरत बेटे की भूखी क्यों! हर सास बहू की दुश्मन क्यों! ... हर नारी का अपना नर्क हर नर्क की अपनी पीड़ा। जो बेऔलाद वह बाँझ मर्द लूल्हा लंगड़ा भी औरत से बेहतर। बेटा बेटे से बेहतर। बेटा बुढ़ापे का सहारा। बेटे पराया धन। हर औरत को अपने से नफरत करना सिखलाया जाता है, इसीलिए बेटों की बलाएँ बहुओं को दुख बेटियों से छुट्टी जैसे तैसे।”¹²

समाज व परिवार के इसी भेदभाव व शोषण का शिकार राजू की बड़ी बहन रसीला भी बनती है। रसीला के जन्म के बाद ही माता-पिता के

भेदभाव का शिकार बन जाती है। लड़के की चाह रखने वाली उसकी माँ के जब पहली लड़की पैदा हो जाती है, तो उसे अत्यधिक दुख होता है, जिसके कारण उसकी छातियों का दूध तक सूख जाता है। वह परिवार में उपेक्षा का शिकार होती ही है, इसी के साथ उसका न ही तो उचित लालन-पालन होता है और न ही शिक्षा-दीक्षा। वह परिवार के इस भेदभाव व अन्याय को चुपचाप इसी आशा में सहन करती रहती है कि आगे ससुराल में जाकर उसकी सभी मनोवांछित इच्छाएँ पूर्ण होंगी और उसे पर्याप्त प्रेम व सुख मिलेगा। उसके भाग्य की विडम्बना ही कही जाएगी कि वहाँ जाते ही उसकी सारी आशाएँ और इच्छाएँ एक ही दिन में धराशाही हो जाती हैं, जब उसे पता चलता है कि उसका पति नपुंसक है। वह उसी दिन पति से समझौता करके नारी मुक्ति आंदोलन में शामिल होकर बरसाती में रहने लग जाती है। इसके बाद वह नारी मुक्ति के लिए संघर्ष करती रहती है। ममी उसकी इसी नारी चेतना विषयक विचारों को व्यक्त करते हुए कहती है कि “सब जानते हैं वह पगली कैसी-कैसी बातें लाउडस्पीकर पर जब तक औरत आज़ाद नहीं होती कोई आज़ाद नहीं होगा, तब तक उसको उसके हक नहीं मिलते, सामाजिक अन्याय पता नहीं इसको इतनी हिंदी क्यों? आजकल सब पढ़े लिखे अंग्रेज़ी यह हिंदी कहती फिरती है लाउडस्पीकर पर जब तक बेटे-बेटे का फर्क रहेगा औरत का बलात्कार शोषण न जाने क्या-क्या बढ़ता जाएगा, जब तक औरत को जायदाद का हिस्सा नहीं तब तक दहेज की खातिर उसे जलाया जाएगा।”¹³ इसी प्रकार की नारी चेतना पति की मृत्यु के बाद बांझ मांजी में भी दिखाई देती है। स्वयं उसी के शब्दों में, “में रसीला के साथ नारी आंदोलनों के जलसों में बोल

सकती तो कहती परिवार के पिंजरे से बाहर निकलो मां-बाप से दबो नहीं, बस हाथ जोड़कर कह दो, हम अपने पैरों पर हम शादी अपनी मर्ज़ी से जब मन होगा। जिससे मन होगा हमें हमारा हिस्सा दो दहेज नहीं हम भाइयों से बराबरी क्यों न करें पतियों से पिसना बंद जो पिसी सो पिछड़ी सास का सामना हटकर सामने से ससुर को समझाओ न समझे तो नमस्कार अलग हो जाओ।”¹⁴ यहाँ पर चित्रित सभी नारियाँ पहले तो शोषित एवं संवेदित होती हैं और फिर विवश होकर उसी शोषण, अन्याय एवं अत्याचार का पुरजोर विरोध करते हुए निरंतर संघर्षरत रहती हैं। सुख तो शायद विधाता ने इनके भाग्य में लिखा ही नहीं। अतः नारी जीवन इनके लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है।

लेखक ने ‘एक नौकरानी की डायरी’ उपन्यास में भी नारी के परम्परागत संवेदित व आधुनिक चैतन्य या विद्रोही दोनों ही रूपों का स्वाभाविक यथार्थ एवं सजीव चित्रण हुआ है। यहाँ पर लेखक ने उपन्यास की मुख्य नारी पात्र शानो और नौकरानी समाज के माध्यम से नारी जीवन की विषमताओं, समस्याओं, पीड़ाओं एवं अत्याचारों की व्यथा-कथा का उद्घाटन किया है। यहाँ पर स्वयं शानो, उसकी माँ (आशा माई), उसकी बहन पारो, नौकरानी बानो, ललिता, उर्मिला जैसी अनेक नारियाँ पुरुष समाज (विशेषकर पतियों) के शोषण की चक्की में पिसने, तिरस्कार और अपमान के घूँट पीने तथा यातना और प्रताड़ना को भोगने के लिए अभिशप्त हैं। पुरुष समाज इनका आर्थिक शोषण तो करता ही है, इसी के साथ वह इनका शारीरिक शोषण करना भी अपना अधिकार समझता है। इसी संदर्भ में शानो ललिता के शब्दों में कहती है कि “ललिता कहती है कि नौकर तो नमकहराम होते हैं, नौकरानियाँ



नहीं, वह बेचारी भोली होती है, अक्सर मालिकों के झांसे में आ जाती हैं, मालिकों के झांसों में भी। वह कहती है कि नौजवान नौकरानियों पर सब हाथ फेरते हैं।”15 यहाँ पर नारी का हर स्तर पर शोषण होता है और वह सामाजिक विषमता एवं भेदभाव के कारण भी आहत है। शानों की ऐसी ही स्थिति है। उसके अनुसार, “पूरी बराबरी न सही, कुछ तो हो। इतनी ऊँच-नीच तो न हो कि कुछ लोग ऐश करें, कुछ लोग भूखे मरें, कुछ लोग हुकम चलाएं, कुछ लोग जी-जी करते रहे, कुछ लोग कारों में घूमें, कुछ को जूते भी नसीब न हों।”16 शानो यहाँ पर एक संवेदनशील एवं सचेतन नारी के रूप में दिखाई देती है, जो नारी समाज की पीड़ाओं से निरंतर आहत होती रहती है।

यहाँ पर शानो की माँ, पारो, उर्मिला और ललिता का पारिवारिक एवं वैयक्तिक जीवन अत्यंत ही कष्टप्रद एवं दुरूह है। इसका प्रमुख कारण इनके पतियों का निखटूपन एवं शराबीपन है। वे स्वयं तो कोई काम करते नहीं और शराब के लिए इनसे पैसे बराबर माँगते रहते हैं। ये काम पर जाती हैं, तो वे इनके चरित्र पर संदेह करते हैं और इनके साथ निरंतर गाली-गलौच और मार-पीट करते रहते हैं। पारो की इसी स्थिति का परिचय देते हुए शानो कहती है कि “जीजा ने उसकी जान आजकल सूली पर चढ़ा रखी है। न खुद कुछ कमाता है न उसे कहीं काम करने देता है और पीने के लिए पैसे बराबर उससे मांगता रहता है। कहता है, अपनी मां-बहन से ला के दे। पीकर उसे मां बहन की गालियाँ बकता है। पारो कहती है उसकी सास भी जीजा के साथ मिल जाती है, कहती है, हमें पता होता तो हम तुझे ब्याह कर ही न लाते। पारों परसों घर आयी थी। बहुत रोयी थी।”17 इसी के साथ नामर्द पति

के कारण उसे बाँझपन के व्यंग्य-बाण भी सहने पड़ते हैं। इतनी पीड़ा और अत्याचारों को सहन करते-करते आखिरकार उसके सब्र का बाँध टूट जाता है और उसे विवशतापूर्ण विरोध एवं विद्रोह का रास्ता अपनाना पड़ता है। अंततः वह पति का घर छोड़कर मायके में रहने लग जाती है और तलाक तक लेने को भी तैयार हो जाती है।

स्वयं शानो की माँ भी पति के ऐसे ही अत्याचारों से पीड़ित रहती है। वह भी इसी प्रकार निखटू, शराबी और उसके चरित्र पर संदेह करने वाला व्यक्ति है। वह भी नित्य प्रति शराब पीकर उसके साथ वही मार-पीट व गाली-गलौच करता था। वह केवल अपने बच्चों की ममता के वशीभूत होकर ही अपने विरोध को दबाए हुए ही सब कुछ चुपचाप सहन करती रहती है। यहाँ तक कि बच्चों का भेट भरने के लिए एक बार उसको भीख तक भी माँगनी पड़ी थी। माँ के इसी दुख एवं असंतोष को व्यक्त करते हुए शानो स्वयं कहती है कि “माँ जब बहुत दुखी होती है तो माथा पीटकर कहती है, मैंने तो इस निखटू को कब का छोड़ दिया होता, मुझे तो इन नामुराद बच्चों की ममता ने मारा।”18 इसी प्रकार की दर्दनाक स्थिति नौकरानी ललिता के नारी जीवन की भी है। वह भी इसी प्रकार अभावों में जीती हुई पति से निरंतर तिरस्कृत एवं प्रताड़ित होती रहती है। अपनी इसी पारिवारिक जीवन की नियति को वह स्वयं शानो के समक्ष प्रकट करते हुए कहती है कि “यह मेरी ही बहादुरी है कि मैं अपने निखटू मरद के साथ निबाह रही हूँ। तुझे क्या पता मैं कितनी दुखी हूँ। यह बात दूसरी है कि मैं तुम लोगों को अपने दुखड़े नहीं सुनाती। हर वक्त हंसती रहती हूँ। गप्प मारती रहती हूँ। अपने फफोले किसी को दिखाती नहीं। सब समझते हैं ...।”19 उपन्यास में अनेक स्थानों पर

ललिता को एक आधुनिक विद्रोही नारी के रूप में भी देखा जा सकता है। वह समाज में दलितों के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती है। एक स्थान पर वह शोषण के कारणों की पोल खोलते हुए कहती है कि “मैं नहीं मानती करम-वरम को। किस्मत-विस्मत को। ये सब ढकोसले हैं अमीरों के। हम गरीबों को धोखा देने के लिए। हमें दबाकर रखने के लिए। हमारा खून चूसने के लिए। मैं नहीं मानती इस सारी बकवास को। यह सारा जाल हमारे दुश्मनों का फैलाया हुआ है। पिछले जनमों के कर्मों का फल इस जनम में, इसका अगले में। मैं नहीं मानती।”²⁰ इसी प्रकार जब नौकरानी बानों की झुगगी में चोरी हो जाती है, तब भी वह वहाँ जाकर सबको खरी-खरी सुनाती है और सभी को चेतावनी तक दे डालती है कि यदि कल तक बानों का पूरा पैसा वापिस नहीं आता है, तो वह सबकी खबर लेगी। इस प्रकार ललिता एक संवेदित एवं तिरस्कृत नारी होने के साथ ही एक जागरूक एवं जुझारू नारी भी है।

उपन्यास में एक स्थान पर शानों स्वयं सभी नौकरानियों के दारुण एवं यातनामय नारी-जीवन की समन्वित रूप से अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि “सभी साब समझते हैं कि नौकरानियों के साथ बेहयाई करना उनका धरम है। कुछ नौकरानियां जरूर खुद भी पहल करती होंगी। सभी नौकरानियों के घर वाले उन पर शक करते हैं, समझते हैं उनकी बीवियाँ सबों के साथ रंगरलियां मनाती हैं। बापू मां पर शक किया करता था। जब पारो और मैं छोटी थी तो मां को पीटते वक़्त बार-बार रण्डी कहता था। चिल्ला-चिल्ला कर कहता था, तू काम करने नहीं जाती, पेशा करने जाती है। उर्मिला कहती है, उसका घर वाला भी हर रात यही तमाशा करता है। मां

कहती है, शायद ही कोई नौकरानी हो, जिसका घर वाला उसे रण्डी न समझता हो।”²¹ यहाँ पर पूरे नौकरानी समाज के अभिशप्त नारी-जीवन के यथार्थ का स्वाभाविक एवं साकार चित्रण हुआ है। इसी उपन्यास की एक मध्यमवर्गीय परिवार की नारी झरना भी सामाजिक एवं पारिवारिक दबाव का शिकार बनकर आत्महत्या तक कर लेती है। उसको एक विजातीय-धर्म के लड़के से प्रेम हो जाता है, जो परिवार व समाज को स्वीकार्य नहीं है। इसी दबाव के चलते वह आत्महत्या कर लेती है।

‘उसका बचपन’ और ‘गुज़रा हुआ ज़माना’ उपन्यास की देवी (बीरू की बहन) की भी झरना के जैसी ही स्थिति है। वह भी इसी दबाव के चलते आत्महत्या की एक असफल कोशिश करती है। इसके बाद परिवार झुक जाता है और उसका विवाह नरेश से कर दिया जाता है। विवाहोपरांत तो देवी का जीवन और भी अधिक दुरूह हो जाता है। वह जिन सुखों की तलाश में वहाँ गयी थी, वह तो उसे मिला नहीं। मिला तो केवल तिरस्कार, प्रताड़ना और अपमान। कुछ समय के पश्चात नरेश उसे अकेली और निस्सहाय अवस्था में छोड़कर स्वयं सदैव के लिए घर छोड़कर चला जाता है, जिसके बाद तो वह घुट-घुट कर जीने को विवश हो जाती है और उसका सम्पूर्ण परवर्ती जीवन ही एक अभिशाप बनकर रह जाता है।

उपर्युक्त दोनों ही उपन्यासों में चित्रित बीरू की माँ जानकी का नारी जीवन तो नौकरानी समाज से भी बदतर एवं विकृत है। जानकी एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार की नारी है। बाल्यावस्था में ही उसका विवाह हो जाता है। पति सरकारी नौकरी में होते हुए भी उसको व परिवार को अभावों में जीना पड़ता है। इसका प्रमुख कारण पति की शराब व जुए की लत है। इसके

अतिरिक्त उसे पति की शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना का भी शिकार होना पड़ता है। पति का प्रायः शराब पीकर घर आना और किसी न किसी बात को लेकर उसके साथ गाली-गलौच और मार-पीट करना उसके नारी-जीवन की नियति बन गई है। इसी के साथ उसे अपनी सास की भी जली-कटी सुननी पड़ती है। परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही दयनीय एवं सोचनीय हो जाती है। घर में हर समय किसी न किसी चीज का अभाव ही रहता है। इसी अभाव के चलते कई बार तो घर पर चूल्हा तक न जल पाने के कारण बच्चों तक को भी भूखा ही सोना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसकी विवशता एवं लाचारी स्पष्ट दिखाई दे जाती है। वह अपने बेटे बीरू के सामने अपनी इन्हीं पीड़ाओं का वृत्तांत सुनाते हुए कहती है कि “मुझे अपने तन तक की होश नहीं। हर वक्त नौकरानियों की तरह इन सबकी सेवा में जुटी रहती हूँ। लेकिन मैं किसी को दोष क्यों दूँ, मेरा तो नसीब ही खराब है। शुरू से ही। न होता तो पिता ने क्यों मुझे ऐसे मरद के पल्ले बाँध दिया होता। इतनी सी थी मैं। अभी तो मेरी उमर गुड़डिया पटोले खेलने की थी। तब से नरक भोग रही हूँ। कभी आटा नहीं, कभी दाल नहीं। कभी मारपीट, कभी गाली-गलौच। पता नहीं पिछले जनम में क्या करम किये थे। उन्हीं का फल भुगत रही हूँ।”²² यहाँ पर उसकी विवशता सहज ही दिखाई देती है।

पति व परिवार के अत्याचारों को जानकी अपने नारी जीवन की नियति मानकर चुपचाप सहन करती रहती है। वह कहीं पर भी विरोध या विद्रोह नहीं करती है। यहाँ तक कि वह अपने पति को जुए व शराब के अड्डे पर और शूम की बीवी के साथ रंगे हाथों पकड़ लिए जाने पर भी केवल चिल्लाकर या रो-धोकर ही अपने क्रोध की

अग्नि को बुझा डालती है। इतने पर भी पति द्वारा उसे न ही तो कोई महत्त्व ही मिल पाता है और न ही कोई सम्मान। वह तो उसके लिए केवल भोग की एक वस्तु ही बनी रहती है, जिसको जहाँ चाहे और जिस रूप में चाहे, वहाँ प्रयोग कर सकता है। उसके अत्याचार व अन्याय की चरम सीमा तो उस समय सामने आती है, जब वह एक दिन जुए में स्वयं उसी को दाँव पर लगा देता है। उस समय उसके नारी-जीवन की पीड़ा को सहज ही अनुभव किया जा सकता है। वह अपनी इसी पीड़ा को अपने बेटे बीरू के समक्ष प्रकट करते हुए कहती है कि “एक बार तो, बेटा, इन्होंने मुझे भी दाँव पर लगा दिया था। ... एक दिन वह सब कुछ हारकर उठने लगे तो उस बेईमान रामचरण ने कह दिया, क्यों नहीं एक हाथ और खेल लेते ? अपनी बीवी को लगा न दाँव पर! अब उसने बेशक मज़ाक में ही कहा हो। लेकिन ये नशे में धुत्त, मान गए। बस फिर क्या था, दूसरे दिन यह बात सारे गाँव में फैल गई। बच्चा बच्चा जान गया। हाय बेटा, तुझे क्या क्या बताऊँ! मैंने क्या नहीं देखा!”²³

‘गुजरा हुआ ज़माना’ उपन्यास में चित्रित दारी बजाज की बीवी कुमारी और शूम की बीवी दोनों ही नारियाँ बाँझपन के अभिशाप को भोग रही हैं, जो पग-पग पर तिरस्कृत एवं संवेदित होती रहती हैं। इसी प्रकार चंबेली और फल्लो जुलाहिन दोनों ही नारियाँ वेश्यावृत्ति के अभिशाप को भोग रही हैं। इन सभी नारियों में फल्लो जुलाहिन ही एक ऐसी नारी है, जो निडर, दबंग और विद्रोही स्वभाव की है। भारत विभाजन के समय की अमन कमेटी में वह मंच पर खड़े होकर अमन की गुहार लगाती है और इसी के साथ देश की सभी नारियों को उनकी शक्ति एवं साहस की याद दिलाते हुए जागरूक करती है। यहाँ पर वह

एक सजग व सचेतन नारी के रूप में दिखाई देती है।

लेखक के 'काला कोलाज' उपन्यास की दोहरी माई का नारी-जीवन और भी अधिक विकृत एवं निर्देयी है। वह वृद्धावस्था के साथ शारीरिक दुर्बलता एवं दोहरीकरण के कष्ट एवं पीड़ा को तो भोग ही रही है, इसी के साथ वह नितांत अकेली, असहाय एवं निराश्रित भी है। वह सारा दिन कूड़े-कचरे के ढेर पर बैठी कचरा बीनती रहती है। वह कचरे से जो भी कुछ कमाती है, उसको जबरदस्ती उसका शराबी नाती छीनकर ले जाता है। अतः उसको पेट भरने के लिए कूड़े के ढेर पर पड़ी जूठन का ही सहारा लेना पड़ता है। रहने के नाम पर उसके पास केवल एक टूटा-फूटा खोख-सा ही है, जिसमें गर्मी-सर्दी वह रात बिताती है। उसको खाते हुए देखकर कहना बड़ा कठिन है कि वह जीने के लिए खाती है या खाने के लिए जीती है। लेखक एक स्थान पर उसके खाने का चित्रण करते हुए कहता है कि वह कूड़े-कचरे के ढेर के पास एक नाली पर बैठी जूठन को खा रही है। उस जूठन में चावल, रोटी के टुकड़े, प्याज के छिलके, अमरूद, केले, मूली, पापड़, फूल, लड्डू, आचार, कीचड़, हड्डियाँ आदि बहुत कुछ मिला-जुला था। जब वह खाने बैठती है तो एक कुत्ता भी उसके पास आकर खड़ा हो जाता है। "जो चीज बुढ़िया के हाथों को अखरती थी, उसे वह कभी कुत्ते की तरफ फेंक देती, कभी नाली में। बाकी के मवाद को मल-मसल कर वह अपने मुँह में डालती जा रही थी, इस तेजी से जैसे चबाये बगैर ही सब कुछ निगलती जा रही हो।"24 एक आवारा कुत्ते और दोहरी माई के जीवन में विशेष अंतर नहीं है। यहाँ पर दोहरी माई का नारी-जीवन मानवता का मुँह चिढ़ाता हुआ दिखाई देता

है। यहाँ पर वह कुछ न बोलकर भी बहुत कुछ कह जाती है।

लेखक के 'नसरीन' व 'मायालोक' उपन्यास की नसरीन व माया दोनों ही नारियाँ शिक्षित, बौद्धिक और आधुनिक सभ्यता व परिवेश से सम्बन्ध रखने वाली हैं। दोनों ही व्यक्तिगत जीवन से असंतुष्ट हैं। संतुष्टि एवं तृप्ति के लिए ही वे भटकती रही हैं। माया को अपने असली घर की तलाश है, जो बार-बार घर बदलने पर भी पूरी नहीं हो पाती है। वह स्वयं को किसी भी घर, समाज व परिवेश में समायोजित या प्रतिष्ठापित नहीं कर पाती है। अतः भटकन, असंतोष व अतृप्ति ही उसके नारी जीवन की नियति बन जाती है। इसी प्रकार नसरीन भी अपने जीवन में सदैव ही अतृप्ति के कारण ही निरंतर छटपटाती रहती है। वह एक उन्मुक्त एवं कामुक नारी है। उसकी कामुकता विकृत एवं असंयमित है, जो किसी से भी और कभी भी तृप्त नहीं हो पाती है। अतः दोनों ही अपने नारी-जीवन से असंतुष्ट एवं विक्षुब्ध रहती हैं।

निष्कर्ष

लेखक कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यासों में चित्रित नारी-जीवन पर दृष्टिपात करने के उपरांत कहा जा सकता है कि नारी जो सभी के जीवन का आधार होती है, उसके स्वयं का जीवन ही निराधार होता है। आश्रय देने वाली नारी स्वयं निराश्रित रहती है। वह जितना अधिक त्याग और समर्पण करती है, समाज उससे उतनी ही अधिक अपेक्षाएँ करता है। वह जितनी अधिक सहनशील, कोमल, प्रेममयी, ममतामयी एवं सहज होती है, उसका जीवन उतना ही अधिक कठोर, क्रूर एवं विद्रूप बन जाता है। उसका न ही तो स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और न ही जीवन। वह जन्म से लेकर मृत्यु तक केवल दूसरों के लिए ही जीती



है। उसको जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ मिलता है तो वह है - तिरस्कार, प्रताड़ना, दुख, कष्ट और अनेक तरह की यातनाएँ। यही सब कुछ ही नारी-जीवन है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. महादेवी वर्मा, 'शृंखला की कड़ियाँ', उद्धृत - डॉ.आशा बागड़ी, 'प्रेमचंद - परवर्ती उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन', शोध-प्रबंध-प्रकाशन, दिल्ली, 1974, पृ. 66
2. डॉ. आशा गुप्ता, 'नवम् दशक की हिंदी महिला कथाकारों की नारी चेतना', कांत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001, पृ. 56
3. चित्रा मुद्गल, 'व्यक्तिगत भेंटवार्ता', उद्धृत - रेणुका नैय्यर, 'नारी: स्वातंत्र्य के बदलते रूप', अभिषेक पब्लिकेशंस, चण्डीगढ़, 1990, पृ. 49
4. डॉ. शंकर प्रसाद, 'सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान', उद्धृत - डॉ.आशा गुप्ता, 'नवम् दशक की हिंदी महिला कथाकारों की नारी चेतना', कांत पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2001, पृ. 56
5. कृष्ण बलदेव वैद, 'नर नारी', राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2000, पृ. 33
6. वही, पृ. 38
7. वही, पृ. 39
8. वही, पृ. 168
9. वही, पृ. 9
10. वही, पृ. 26
11. वही, पृ. 121-122
12. वही, पृ. 117
13. वही, पृ. 99
14. वही, पृ. 88
15. कृष्ण बलदेव वैद, 'एक नौकरानी की डायरी', राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 2002, पृ. 107
16. वही, पृ. 23
17. वही, पृ. 101
18. वही, पृ. 25
19. वही, पृ. 164
20. वही, पृ. 41

21. वही, पृ. 65

22. कृष्ण बलदेव वैद, 'गुजरा हुआ जमाना', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1997, पृ. 226

23. कृष्ण बलदेव वैद, 'उसका बचपन', राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2012, पृ. 86

24. कृष्ण बलदेव वैद, 'काला कोलाज', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1994, पृ. 186